कुण्डलिनी जागरण में शरीर की अवस्था

कुछ देर बाद देखा कि अन्नपूर्णा मन्दिर के बरामदे पर कुछ लोग एकत्रित है । यह देखकर सोचा कि शायद माँ वहीं है । जाकर देखा, मेरा अनुमान सत्य निकला । माँ मन्दिर के बरामदे पर सो रही हैं और विश्वविद्यालय के कुछ छात्र मां के निकट बैठे हैं । ये सभी मेरे छात्र हैं । मैं भी एक कोने में बैठ गया । 'साधन–समर' आश्रम के श्रीयुत् अतुल ब्रह्मचारी और श्रीयुत् नरेश बाबू माँ के साथ बातें कर रहे थे । एक तो नामघर में उच्च स्वर से नाम चल रहा था। दूसर मैं माँ से कुछ दूर बैठा था, इसलिए बातचीत किस विषय पर हो रही थी, सुन नहीं सका । अपने छात्र प्रफुल्ल चक्रवर्ती को ध्यानस्थ देखा । माँ ने उससे पूछा–"तुम कहाँ से आये हो ?"

उसने कोई जवाब नहीं दिया । यहाँ तक कि जब उसके मित्रों ने उसे धक्का दिया तब भी वह कुछ नहीं बोला । यह देखकर मैं चकित रह गया ।

इसी समय माँ ने कहा–"देखो तो, प्रमथ बाबू नामधर में कीर्तन कर रहे है या नहीं ।"

एक व्यक्ति ने कहा–"हाँ, वे नामघर में कीर्तन कर रहे है ।"

माँ ने कहा–"मैं जहाँ नामघर से होती आऊँ ।"

मैं भी माँ के साथ चल पड़ा । सभी छात्र बैठे रहे ।

कुछ देर बाद आकर देखा कि आश्रम के आंगन में छात्रों की काफी भीड़ है । एक दौड़ा हुआ आया और नामघर से एक पंखा ले गया । कोई दुर्घटना हो गयी है समझकर खुकुनी दीदी और मैं जल्दी से छात्रों के पास गये । जाकर देखा कि प्रफुल्ल चक्रवर्ती जमीन पर छटपटा रहा है ।

मैंने अपने एक छात्र विजय से पूछा – "क्या बात है ?"

उसने बताया कि प्रफुल्ल अपनी माँ की मौत के बाद से प्रायः मां को स्वप्न में देखता है । आज यहाँ अस्थिर होकर सो गया है।

यह सुनकर मैंने सोचा कि ऐसे मौके पर माँ को बुला लाना उचित होगा । नामघर से माँ को बुला लाया । बालक को जमीन पर इस प्रकार लोटते–पोटते देख मां ने कहा–"इस तरह जमीन पर पड़े रहना ठीक नहीं है । ठंढ लग सकती है । इसे मंदिर के बरामदे पर लिटा दो ।"

मैंने लड़कों से यही कहा । उन लोगों ने प्रफुल्ल को उठकर बैठने को कहा, पर वह उसी प्रकार पड़ा रहा । मैंने देखा कि उसका ज्ञान बिलकुल लुप्त नहीं हुआ हैं, पर अस्थिरता अधिक हैं। माँ ने दो–तीन बार उसे उठाने को कहा तो लड़के ने उसे पकड़कर मन्दिर के बरामदे पर ले आये और सीमेण्ट की फर्श पर उसे लिटा दिया । मां ने कम्बल के ऊपर लिटाने को कहा था, इस ओर किसी का ध्यान नहीं था । मां ने बालक के मेरुदण्ड पर हाथ फेरने की आज्ञा दी। नरेश बाबू पास ही थे, वे हाथ फेरने लगे ।

मैंने देखा कि ठीक से हाथ नहीं फेरा जा रहा है । लेकिन भीड़ इतनी है कि बालक के पास तक पहुँचना कठिन है।

तभी माँ ने कहा – "इसके भौहों के मध्य से सिर के दोनों ओर रगड़ दो।"

इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया तो मैं जबरन बालक के पास पहुँचा । उसे एक चादर पर लिटाकर भौहों से कपाल तक धीरे–धीरे उँगली फेरने लगा । कुछ देर तक ऐसा करने के बाद प्रफुल्ल नामघर में हो रहे कीर्तन के साथ–साथ स्वयं भी नाम करने लगा।

रह–रहकर कहने लगा – "मैं इतना कमजोर क्यों हो गया हूँ?"

जब मां से इस बात की चर्चा की गयी तो उन्होंने कहा– "कमजोरी अनुभव तो करेगा ही । कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने से शरीर पर एक धक्का लगता है और जब उसका वेग नहीं सम्हालने में आता तब लोग इस तरह पड़ जाते हैं। इससे पूछो तो क्या बीच–बीच में ऐसा होता है ?"

मैंने उससे पूछकर मां से कहा कि इसके पहले ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी । यह पहला मौका है ।

लड़के की इस स्थिति को देखकर मुझे निर्मला मां को ओर सेवादासी की घटना याद आ गई। मैंने मां से पूछा – "मां, क्या यह निर्मला की तरह की कोई स्थिति है ?"

मां–हां, वही। यह मत सोच लेना कि वह अपनी इच्छा से कर रहा है। एक लक्ष्य होने पर शरीर पर इस प्रकार के भावों का वेग आ जाता है और इस वजह से देह का पतन होता है । बीच–बीच में अगर इस प्रकार की अवस्था होती है तो मान लेना चाहिए कि यह अच्छी अवस्था प्राप्त कर रहा है । लेकिन ऐसा भी हो सकता हे कि एक बार ऐसी अवस्था हो गयी, फिर जीवन में ऐसी अवस्था नहीं आयी ।

मैं–धार्मिक विषयों के अलावा अन्य किसी विषय को लेकर एक लक्ष्य होने पर क्या इस तरह के भावों का आक्रमण होता है ?

मां–नहीं ।

मैं–यह लड़का तो केवल अपनी माँ को स्वप्न में देखकर चिन्ता करने लगा, ऐसी हालत में इस पर भाव का आक्रमण क्यों हुआ ?

माँ–पिता–माता देवतुल्य ।

मैं–अगर कोई मृत बालक की चिन्ता करते हुए एक लक्ष्य हो जाय तो क्या उसकी स्थिति ऐसी होगी?

मां–यह भी हो सकता है, पर उस हालत में उसके साथ भगवद् भाव युक्त रहेगा। अर्थात् अगर वह चिन्ता करता रहे कि भगवान् उसके बालक को ले गये तभी ऐसा हो सकता है ।

भावाविष्ट व्यक्ति को सचेतन करने के लिए नाम क्यों सुनाना चाहिए

प्रफुल्ल जब मंदिर के बरामदे पर पड़ा था तब माँने उसके कान के पास भगवान् का नाम करने की आज्ञा दी थीं । मैंने माँ से पूछा– "माँ, नाम करते–करते या सुनते–सुनते लोग जब संज्ञाशून्य हो जाते हैं तब उसे सचेतन करने के लिए नाम क्यों सुनाया जाता हैं? यह तो प्रकृति के विरुद्ध लगता है ।"

माँ–क्यों ?

मैं–आग के ताप से हम पानी गरम करते हैं, पर गरम पानी को ठंढा करने के लिए पुनः ताप नहीं देते ।

माँ–यह वैसा नहीं है। यह आखिर है कैसा, जिस पथ से जाना, उसी पथ से लौट आना। यह भी स्वाभाविक है ।

समाधि की अवस्था

मैं–मैं खुकुनी दीदी की डायरी में पढ़ चुका हूँ कि तुमने समाधि को चार भागों में विभक्त किया है । जड़ समाधि, सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि और चैतन्य समाधि। निर्विकल्प समाधि में चैतन्य नहीं रहता क्या जो पुनः चैतन्य समाधि कहती हो ?

माँ–निर्विकल्प समाधि में क्या रहता है या क्या नहीं रहता हैं, यह कहा नहीं जा सकता । इस वक्त यह सब बातें नहीं ।

मैं–समाधि में क्या हाथ–पैर सख्त हो जाते हैं ?

माँ–केवल शरीर के लक्षणों को देखकर समाधि है या नहीं, कहा नहीं जा सकता। शरीर के लक्षणों के अलावा भाव, बातें आदि मिलाकर ही कहा जा सकता है कि समाधि है या नहीं । समाधि में हाथ–पैर सख्त हो सकते हैं, पर वे इस प्रकार सख्त होंगे जैसे मुर्दों का होता है। पैर पकड़कर हिलाने से सारा शरीर हिलने लगेगा। (अपने को दिखाती हुई) इस शरीर पर से न जाने कितनी अवस्थाएँ गुजर गयी हैं। अक्सर हाथ–पैर सख्त हो जाते थे । इतने सख्त होते थे कि खूब जोर से भींजने पर भी मुझे कुछ पता नहीं चलता था । लेकिन यह स्थिति समाधि की नहीं है। यह सब भाव के आवेग में होते थे । इन अवस्थाओं को कौन समझता है, कौन पहचानता है ? तुम लोगों ने नवद्वीप में सेवादासी की स्थिति को देखा है। चूँकि तुमने देखा है, इसलिए कह रही हूँ। अक्सर देखा गया है कि भावावेश के समय बहुत लोग मुट्ठी बांधे रहते हैं। अगर कोई सामान पकड़ लेते हैं तो उसे छोड़ना नहीं चाहते। जहां इस प्रकार दृश्य देखना, वहां समझ लेना कि भावावेश के साथ इच्छाशक्ति मिल गयी है। लेकिन समाधि में यह सब नहीं होता। समाधि में अगर हाथ कड़ा हो जाता है तो उसे जिस तरह रखना चाहोगे, उसी प्रकार रहेगा। समाधि में मुट्ठी बँधे रहने पर भी ज्यों ही उँगलियों को खींचोगे त्योंही खुल जायँगी, फिर ज्योंही छोड़ दोगे, तुरत मुट्ठी बँध जायगी। तुम लोगों ने शायद देखा होगा कि कोई एक आदमी खड़ा है, अचानक उस पर बिजली गिरी, इससे वह मर गया । मर जाने पर भी वह जीवित व्यक्ति ही तरह खड़ा रहता है । ज्योंही उसे धक्का दोगे, वह गिर जायगा। समाधि की अवस्था लगभग ऐसी होती है। यहां इच्छा–शक्ति के अभाव में शरीर को जिस प्रकार रखना चाहते हो, उसी प्रकार रख सकते हो। अगर यह देखो कि शरीर के हाथ–पैर को इच्छानुसार नहीं रख पा रहे हो, उसमें बाधा देने का कोई लक्षण प्रकट नहीं हो रहा है तो समझ लेना कि वह समाधि नहीं है।

मैं–जड़ समाधि किसे कहते हैं?

मां–इसमें शरीर जड़ की तरह पड़ा रहता है। मन भी जड़ की तरह हो जाता है। जब यह भाव दूर हो जाता है तब लोग देख पाते हैं कि जगत् ने नया आकार ग्रहण किया है । जगत् के प्रति उसकी दृष्टि बदल गयी है ।

मैं–नवद्वीप में तुमने कहा था कि जड़ समाधि उस अवस्था को कहते हैं जब जागतिक विषयों के साथ सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। लेकिन आध्यात्मिक जगत् के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ है। ऐसी हालत में जिसे जड़–समाधि प्राप्त हुई है, उसकी जागतिक स्थिति कैसे बदल जायगी? जबकि कोई भी आध्यात्मिक उसके निकट प्रकट नहीं हुआ है।

मां – तुम्हें जिस अवस्था की बातें बतलायी थी, वह जड़–समाधि की प्रथम अवस्था है। उस अवस्था में आध्यात्मिक ज्ञान अवश्य नहीं होता, पर उस ज्ञान का बीज भीतर रह सकता है जो आगे चलकर थोड़ा–थोड़ा प्रकट होता है। जैसे अपने को अत्यन्त दीन समझना। हम लोग भद्रता और शिष्टाचार दिखाने के लिए अपने को दीन–हीन कहा करते हैं। लेकिन दीन भाव जब हृदय के अन्तःस्थल से प्रकट होता है तब लोगों से काफी अपमानित होने पर भी उसे क्रोध नहीं आता। कारण उस वक्त दीनता मौखिक बात नहीं होती। उसकी समस्त सत्ता के भीतर उसकी अनुभूति होती है। क्षमा–धैर्य आदि गुणों का विकास इसी प्रकार होता है। जिन लोगों को केवल भावावेश होता है, उनमें यह सब ज्ञान नहीं रहता । कारण भावावस्था में लोगों को सेवा ग्रहण करते देखा गया है। लेकिन जिनके भीतर खण्ड–खण्ड ज्ञान प्रस्फुटित होता है, उनके लिए अन्य लोगों का प्रणाम या सेवा ग्रहण करना संभव नहीं होता । भाव, समाधि ये सब कितने प्रकार के हो सकते हैं, उसे बताकर समाप्त नहीं किया जा सकता । हम लोगों का स्वभाव ऐसा है कि अगर किसी में किंचित् असाधारणत्व देखते हैं तो उसका वर्णन करते समय काफी बढा–चढ़ाकर कहते हैं।

सभी लोग हँस पड़े।

रात के २–३० बज चुके थे, देखकर माँ को प्रणाम करने के बाद नामघर में चला आया। वहाँ बैठकर नाम करने लगा । रात ४–३० पर माँ नामघर में आयी। उस वक्त हम लोग काफी तेजी से कीर्तन कर रहे थे । इस समय जो लोग नामघर में सो रहे थे, उसके कान के पास करताल बजाती हुई माँ जगाने लगीं। माँ का यह कौतुक अच्छा लग रहा था। करताल की आवाज से भक्तगण चौंक रहे थे। सामने माँ को देखकर हर्ष और विस्मय से उनके चरणों में प्रणाम करते रहे।

२७ मई, १९३७ ई. गुरुवार। पिछली रात को बालक और वृद्धों का सम्मिलित कीर्तन हुआ था । ज्योतिष बाबू ने नियम बनाया था कि कीर्तन खड़े–खड़े करना होगा। कीर्तन–स्थल पर कोई बैठ नहीं सकता। उसी नियमानुसार कीर्तन हो रहा था और काफी अच्छे ढंग से हो रहा था ।

माँ एक बार थोड़ी देर के लिए नामघर में आयी थीं। सवेरे हम लोग अपने–अपने घर चले आये।

श्री श्री माँ का ढाका–हाल में गमन

आज साढ़े दस बजे माँ ढाका–हाल में गयीं। ननी चक्रवर्ती, श्रीकंठ आदि छात्र आकर माँ को ले गये। साथ में मुझे भी ले गये। माँ के साथ भोलानाथ, खुकुनी दीदी, बेबी दीदी आदि भी गयीं। लिटन–हाल में सभी लोगों के लिए बैठने की जगह ठीक की गयी थी। छात्र माँ से प्रश्न करने के लिए मुझसे अनुरोध करने लगे ।

मैंने बच्चों की ओर इशारा करते हुए माँ से कहा – "माँ, यह सब बच्चे मेरे छात्र हैं। तुम इन लोगों को कुछ ऐसी बातें बताओ ताकि इनका उपकार हो ।"

माँ–(हँसकर) ये सब तुम्हारे ही छात्र हैं। तुम किसके छात्र हो?

मैं–तुम्हारा।

माँ हँसकर चुप रह गई। बाद में बोलीं–"बात मेरे पास नहीं आ रही हैं। तुम लोग प्रश्न करो, बात पर बात होती रहेगी ।"

प्रफुल्ल–धर्म की क्या आवश्यकता है ? हम लोग धर्म–कर्म क्यों करें ?

माँ–तुम लोग क्या करना चाहते हो ?

प्रफुल्ल–पढ़ लिखकर ज्ञान अर्जित करूँगा। अर्थ उपार्जित करूँगा, लोगों की सेवा करूँगा ।

माँ–तुम लोग जो ज्ञान उपार्जन कर रहे हो, वह जागतिक ज्ञान हैं। उसे वास्तविक ज्ञान नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उस ज्ञान से 'मैं कौन हूँ,' 'कहाँ से आया', 'कहाँ जाऊँगा' इन सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते । इसके अलावा एक घण्टा, यहाँ तक कि एक मिनट बाद हम लोगों का क्या होगा, यह भी नहीं जान पाते। बिना धर्म वास्तविक ज्ञान नहीं होता। धर्म का अर्थ है जिसे जगत् ने धारण कर रखा है। एक मात्र धर्म के द्वारा ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। पर यह जागतिक ज्ञान तुम्हें आध्यात्मिक ज्ञान की ओर ले जा सकता है, यदि उसी रूप में जागतिक ज्ञान प्राप्त कर सको।

आगे माँ ने कहा–"इसके अलावा तुम लोगों का कहना है कि जनसेवा करूँगा, यह कैसे सम्भव है ? इस वक्त तो सोच रहे हो कि अर्थ उपार्जित कर दस लोगों का उपकार करूँगा। बाद में ऐसा भी हो सकता है कि अपने परिवार का भरण–पोषण नहीं कर पाओगे। तब दूसरों की क्या सेवा करोंगे ? तुम लोगों ने यह भी देखा होगा कि जो लोग अधिक अर्थ उपार्जन करते हैं, वे दूसरों की सहायता न कर संचय की ओर अधिक ध्यान देते हैं। अगर गौर करोगे तो ज्ञात होगा कि व्यक्ति की जो इच्छा होती है, प्रायः वह उसे नहीं कर पाता। अपनी इच्छाशक्ति और महाशक्ति के बीच यह द्वन्द्व चिरकाल से चला आ रहा है। दूसरों की सेवा करने की इच्छा हुई, पर देखा गया कि अपनी सेवा करने का अवसर नहीं मिला। दूसरों की सेवा करना दूर की बात है। इसीलिए कहती हूँ भगवान् को बिना जाने, उनसे शक्ति न पाने पर किसमें इतना साहस है कि वह दूसरों की सेवा करे।"

कुछ देर बाद माँ ने आगे कहा–एक बात और है। पशु--पक्षी से लेकर मनुष्य तक सभी आनन्द चाहते हैं। यही उनका स्वभाव हैं, क्योंकि सभी में उस आनन्द का आस्वादन है। अन्यथा उसे मांग न पाते। दूसरी ओर मनुष्य खण्ड--आनन्द पाकर संतुष्ट नहीं होता। उसे अखण्ड आनन्द चाहिए जिसे आनन्द का अन्त नहीं होता। जागतिक वस्तुओं से हमे जो आनन्द मिलता है, वह खण्ड आनन्द होता है, वह हमलोगों को तृप्ति नहीं दे पाता। जागतिक वस्तुएँ हम लोगों में अभाव बनाये रखती है। जिसे अर्थ की आकांक्षा होती है, जब उसे अर्थ मिलता है तब वह और चाहता है अथवा अन्य कुछ चाहता है। किसी प्रकार से उसे शान्ति नहीं मिलती । केवल भगवान् को प्राप्त कर लेने पर लोग शान्ति और आनन्द पा सकते हैं । पर प्राप्त कैसे कर सकते हो ? सब कुछ उसके भीतर है । देखा होगा, सत्य सभी चाहते हैं । मिथ्या कोई नहीं चाहता । लोगों के भीतर सत्य है, इसलिए वह उसे चाहता है, वर्ना उसे न माँग पाता । यही रूप चैतन्य का है, उन दिन देखा नहीं, तुम लोगों में से एक छात्र बेहोश होकर पड़ा रहा और तुम लोग परेशान हो गये । यह अचेतन भाव तुम लोगों को पसन्द नहीं आता, इसलिए उस बालक को चेतन करने का प्रयत्न करने लगे । दूसरी ओर तुम लोगों में चैतन्य–ज्ञान है, इसलिए तुम लोग उसकी आकांक्षा करने लगे। आनन्द का यही रूप है । इसलिए कहती हूँ कि तुम लोगों में सत्य, चैतन्य, आनन्द, शान्ति सब कुछ है । केवल तुम लोग उसे अनुभव नहीं कर पाते।

एक छात्र–धर्म प्राप्त करने के लिए बहिरंग साधना अर्थात् पूजा आदि की आवश्यकता होती है ?

माँ–(हँसकर) अब तक तुम लोग धर्म की जरूरत क्या है, इस विषय पर बातें करते रहे । अब कह रहे हो कि धर्म के बहिरंग की क्या जरूरत है ? धर्म से धर्म के बहिरंग में चले आये । इसीलिए मैं कह रही थी कि धर्म की आवश्यकता है । आवश्यकता है, इसीलिए

तुम लोग यह प्रश्न पूछ रहे हो ? रहा बहिरंग साधना का प्रश्न, सो जान लो कि वह सभी के लिए समान नहीं है । जगत् में धर्म केवल एक है और उसे प्राप्त करने के लिए भिन्न–भिन्न भाव से प्रयत्न करते हैं, क्योंकि उसके अलावा शान्ति और आनन्द नहीं है । पूजा–अर्चना कहो, नाम करना कहो, ध्यान करना कहो, ये सब धर्म प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग हैं । किसी को पूजा करना अच्छा लगता है, किसी को ध्यान करना अच्छा लगता है । यह सब व्यक्तिगत संस्कार पर निर्भर करता है । इस बारे में सर्व साधारण कोई नियम नहीं हैं । इस दिशा में तुम लोग अपनी रुचि के अनुसार कार्य कर सकते हो। कहने का मतलब जो कुछ करो, वह भगवान् के उद्देश्य से करो, बस । यही देखो, तुम लोग यहाँ विभिन्न कमरों में रहते हो, पर जब स्नान करने जाते हो तब एक ही तालाब[1] में जाते हो । तालाब एक ही है और वहाँ तक पहुँचने के लिए मार्ग से जाना पड़ता है, वही भी एक है । चूँकि तुम सब भिन्न–भिन्न कमरों में हो, इसलिए मार्ग भिन्न–भिन्न समझते हो । उसी प्रकार धर्म एक है और धर्म प्राप्त करने की साधना भी एक है, पर लोगों के भिन्न–भिन्न संस्कार हैं, इसलिए साधना भी भिन्न–भिन्न लगती है । कोई नाम करके धर्म प्राप्त करता है, कोई पूजा करके धर्म प्राप्त करता है, कोई ध्यान के माध्यम से धर्म प्राप्त करता है । इसी प्रकार से इनमें प्रत्येक साधना है । इसीलिए मैं कहती हूँ कि साधना एक है । पूजा–जप अक्सर बच्चों के माता–पिता मुझसे यह शिकायत करते हैं कि उनके बच्चों में धर्मभाव नहीं है । वे लोग संध्या आह्निक आदि पारमार्थिक कार्य नहीं करते। सभी विषयों पर अविश्वास करते हैं । यहाँ तक कि ब्राह्मण सन्तान होकर गले में जनेऊ नहीं रखता । यह सब बातें सुनकर मैं उनसे कहती हूँ कि इस दिशा में बच्चों के माँ–बाप ही अधिक दोषी हैं, क्योंकि वे लोग अपने बच्चों को अर्थकरी

१. ढाका हाल में एक तालाब है । माँ को यह बात कैसे मालूम हो गयी, यह सोचकर मैं चकित रह गया । आदि प्रत्येक की आवश्यकता है ।

विद्या की शिक्षा दिलवाते हैं, धार्मिक शिक्षा नहीं देते। धार्मिक–शिक्षा के अभाव में अगर लड़के नास्तिक या उच्छृङ्खल होते हैं तो माँ–बाप को शिकायत करने का अधिकार नहीं हैं, क्योंकि यह सब उनका कर्मफल है। इसीलिए मेरा कहना है कि बचपन से ही बच्चों को जागतिक शिक्षा के साथ–साथ धार्मिक शिक्षा देनी चाहिए। बचपन से धार्मिक शिक्षा देने पर उसका परिणाम अच्छा होता है।

विजय–जनेऊ धारणा करने की सार्थकता क्या है ? हम लोगों का विचार है कि जातिभेद के कारण हमारी अवनति हुई है। अन्य देशों में जिस प्रकार जातिभेद नहीं है, उसी प्रकार हमारे यहाँ से जातिभेद मिटाकर देश का सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न हम क्यों न करें?

माँ–पेड़ की जड़ काटकर पत्ते और फलों की ओर देखने से कोई लाभ होगा ? पहले वृक्ष की रक्षा करने की आवश्यकता है। इसके बाद फल–पत्ते की। तुम लोग ब्राह्मण–मेहतर एक करना चाहते हो? लेकिन तुम लोगों में कौन मेहतर का कार्य करने को तैयार है। रेलगाड़ी पर यात्रा करते समय कुली की सहायता लेते हो, पर अपना बोझ स्वयं नहीं उठाते। तुम सब एक होना चाहते हों, पर एक दूसरे की वृत्ति नहीं लेना चाहते। यह ठीक है कि सभी के प्रति भ्रातृभाव पोषण करना अच्छी बात है। जाति कहने पर मैं एक जाति समझती हूँ। सामाजिक शृंखला के लिए प्राचीन काल से जातिभेद की परम्परा है। प्रस्तुत जातिभेद भगवान् की इच्छा से हुआ है। अगर कभी मिट गया तो वह भी भगवान् की कृपा से मिटेगा। जबतक है तबतक मानकर चलना ठीक होगा।

विजय–जनेऊ पहन लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। जनेऊ धारण करने का उद्देश्य क्या है और संध्या–आह्निक करने से क्या लाभ होता है ?

माँ ने विजय का नाम पूछा और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वह ब्राह्मण है तब उन्होंने पूछा–"तुमने शायद जनेऊ फेंक दिया है ?"

विजय ने इसे स्वीकार किया। माँ हँस पड़ी।

बाद में माँ कहने लगीं–"उपवीत ब्राह्मणत्व का चिह्न है, निशान। तुम लोग भले ही विश्वास करो या न करो, पर मैं कहूँगी कि उपवीत धारण करना और संध्या–आह्निक की आवश्यकता है । तुम लोग जिस प्रकार माँ–बाप के दस–बीस आदेशों का पालन करते हो, उसी प्रकार संध्या–आह्निक करते जाओ । इसकी सार्थकता अभी नहीं समझ रहे हो, फिर भी माँ–बाप के आदेश को मानते चलो ।"

एक छात्र–जो लोग इस जन्म में मनुष्य हैं, क्या वे अगले जन्म में भी मनुष्य होंगे ?

माँ–जन्मान्तर कर्म के अनुसार होता है । यदि मनुष्य–जन्म प्राप्त कर पशु की तरह कार्य किया जाय तो मनुष्य–जन्म नहीं होता । इसके अलावा मृत्युकाल में लोग जैसी चिन्ता करते हैं, उसी के अनुसार परवर्ती जन्म होता है । जैसे राजा भरत हिरण की चिन्ता करते रहे तो हिरण हुए थे ।

एक छात्र–पशु–पक्षी के बारे में क्या बात होती है ?

माँ–"पशु–पक्षी के बारे में भी यही बात लागू होती है । पर पशु–पक्षी और मानव में जरा प्रभेद है । पशु–पक्षी मृत्यु के समय जो चिन्ता करेंगे, वह पहले से ही तय है । किसी एक पशु का जन्म होगा, कौन सा जन्म होगा, यह पहले से ही स्तर पर स्तर से ठीक–ठाक है । पशु–पक्षी के कर्म द्वारा उसमें व्यतिक्रम होने की सम्भावना नहीं है । लेकिन मनुष्य अपने कर्म के द्वारा अपना परवर्ती जन्म नियन्त्रित कर सकता है । इसीलिए जिन्हें होश आ गया है, उन्हें मैं मनुष्य कहती हूँ । लेकिन यह मत समझ लेना कि जीवन भर स्वेच्छाचारी बने रहें और अन्तकाल में सुचिन्ता द्वारा सद्गति प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि लोगों की मृत्यु के समय एक ऐसी अवस्था आती है जब वह अपनी इच्छानुसार चिन्ता नहीं कर पाता । उसके जीवन के समस्त कर्मों से ही अन्तकालीन चिन्ता निर्धारित होती है और उसी चिन्ता के अनुसार उसका जन्म होता है। इसीलिए सत्कर्म करने की आवश्यकता होती है ।

एक छात्र–क्या भगवान् को देखा जा सकता है ?

माँ–(हँसकर) हाँ, देखा जा सकता है । मैं तुम लोगों को जिस रूप में देख रही हूँ और तुम लोगों से बातें कर रही हूँ, ठीक उसी प्रकार भगवान् को देखा जा सकता है और उनसे बातें की जा सकती हैं ।

पूर्व छात्र–भगवान् देखने में कैसे हैं ? उनके रूप का जरा वर्णन कीजिये ।

माँ–(हँसकर उपस्थित छात्रों को दिखाती हुई) ये सभी भगवान् के रूप हैं ।

सभी अट्टहास कर उठे ।

अब विदा लेने का समय आ गया । माँ सभी लोगों से कहने लगीं–"पिताजी, मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ । मेरे एक अनुरोध को मानना पड़ेगा । बोलो, तुम सब इसे मानोगे ?"

छात्रों ने कहा कि हम लोग यथाशक्ति आपके अनुरोध की रक्षा करेंगे ।

माँ ने कहा–"मैं जानती हूँ कि तुम लोग मेरी बात मानोगे, फिर भी मैं तुम लोगों से वायदा चाहती हूँ । तुम लोग सभी कर्म जिस प्रकार करते जा रहे हो, उसी प्रकार उनके कार्य में कुछ समय दो। एक घण्टा, आधा घण्टा, कम से कम दस मिनट का समय उनके कार्य में देना । दिन के २४ घण्टों में से कम से कम दस मिनट भगवान् के कार्य में देना कोई बड़ी बात नहीं है । तुम लोगों को स्थान–अस्थान विचार करने के लिए नहीं कहती, किसी निर्दिष्ट आसन को करने को नहीं कह रही हूँ । तुम लोग किसी भी स्थिति में भले ही रहो, कम से कम दस मिनट उनका नाम लेते रहना । यही मेरा अनुरोध है। मैं अधिकतर लोगों से दस मिनट समय की भीख माँगती हूँ । भीख शब्द मुझे अच्छा नहीं लगता । वह इसलिए कि अपने लोगों से क्या कोई भीख माँगता है ?"

माँ हँसमुख भाव से इन बातों को व्यक्त करती रहीं जिसे सुनकर सभी गद्गद हो गये । छात्रों ने सानन्द जवाब दिया कि वे लोग नित्य कुछ समय भगवान् के उद्देश्य से देंगे ।

प्रफुल्ल–आप बीच–बीच में आकर हम लोगों को उत्साह देती रहें ।

माँ–तुम लोग मुझे ले आना ।

प्रफुल्ल–औरतों के कारण हम लोग आपके पास तक पहुँच नहीं पाते । एक बात और हम लोगों ने यह देखा कि आपमें स्वजाति प्रीति कुछ अधिक है ।

यह सुनकर सभी हँस पड़े ।

माँ–(हँसकर) तुमने ठीक कहा है । महिलाओं के प्रति मेरा आकर्षण अधिक है । लेकिन संसार में सभी महिलाएँ हैं, सभी प्रकृति हैं । एकमात्र पुरुष भगवान् है । जगत् के सभी परमपति को चाहते हैं । प्रकृति का स्वभाव है–माँगना । पुरुष कभी कुछ नहीं चाहता । इस दृष्टि से हम लोग प्रकृति अर्थात् महिला हैं । इस दृष्टि से तुम लोगों के प्रति मेरा आकर्षण है ।

सभी लोग हँस पड़े ।

प्रफुल्ल–महिलाएँ आपके ऊपर जो अत्याचार करती हैं, उसे देखकर हम लोगों को बड़ा कष्ट होता है । आप उन लोगों को मना क्यों नहीं करती ?

माँ–मैं मना नहीं कर पाती । अगर मुझमें शरीर–रक्षा करने की कोई वासना होती तो मैं मना कर सकती थी । यह शरीर रहें या जाय, इस सम्बन्ध में मेरी कोई इच्छा नहीं हैं । फलतः मैं बाधा नहीं दे पाती । अगर तुम लोग इस शरीर की रक्षा करना चाहो तो यह शरीर रहेगा । अगर तुम लोग नहीं चाहोगे तो नहीं रहेगा । तुम लोगों ने देखा होगा कि महिलाएँ मुझे सिन्दूर लगाते वक्त मेरी क्या गति बना डालती हैं । वे सब मेरे सिर, कपोल, आँख आदि में सिन्दूर पोत देती हैं ।

सिन्दूर से मेरे तमाम कपड़ें, कुर्ता लाल हो जाता है। मुँह और बाल धोते समय नाली में से रक्त गंगा प्रवाहित होने लगती है, फिर भी मैं उन्हें सिन्दूर लगाने से मना नहीं कर पाती । शरीर रक्षा का कोई भाव मुझमें नहीं रहता । सभी लोग इसे समझ नहीं पाते। मैं अपने हाथ से खा नहीं पाती, यह देखकर कुछ लोग चकित रह जाते हैं । वे लोग देखते हैं कि मैं हाथ से सभी कार्य करती हूँ जबकि खाना नहीं खाती। इस बारे में मुझसे प्रश्न भी किया गया है । मैंने उन लोगों को बताया कि लोग आाहार करते हैं जीवन–रक्षा के लिए, पर मुझमें जीवन–रक्षा करने की कोई इच्छा नहीं है, ऐसी हालत में यह कार्य मैं करने जाऊँ ? कुछ दिनों तक अपने हाथ से खाती रही, पर भोजन अपने मुँह में न डालकर दूसरों के मुँह में डालती रही । यह देखकर लोगों ने फिर मुझे अपने हाथ से खाने नहीं दिया ।

प्रफुल्ल–आप प्रणाम ग्रहण क्यों करती हो ?

माँ–एक समय ऐसा भी था जब मैं प्रणाम ग्रहण नहीं कर पाती थी। जब कोई मुझे प्रणाम करता था तब जबतक मैं उसका पैर छूकर प्रणाम नहीं कर लेती थी तब तक मन बेचैन रहता था । कोई मुझे प्रणाम करे, मेरा प्रणाम बिना लिये जा नहीं सकता । कभी ऐसा भी हुआ है कि कोई दूर रहकर पीछे से प्रणाम करता तो मेरा सिर अपने आप जमीन में झुक जाता था । आजकल जब लोग प्रणाम करते हैं तब मैं बाधा नहीं देती, क्योंकि अब यह सोचती हूँ कि मुझे उपलक्ष करके लोग भगवान् को प्रणाम करते हैं ।

इतना कहने के बाद माँ ने बिदा माँगी । मैं भी घर चला आया।

तीसरे पहर आश्रम में आकर देखा कि माँ आश्रम के मैदान में एक पेड़ के नीचे सोयी हुई हैं । चारों ओर से औरतों ने इस कदर घेर रखा है कि हवा तक नहीं पहुँच पा रही है । कोई प्रणाम कर रही है तो कोई सिन्दूर लगा रही है । माँ का चेहरा सिन्दूर से लाल हो गया है । पता नहीं किसने माँ के ऊपर नीलाम्बर एक बनारसी

साड़ी रख दिया है । नाक में नथ पहनायी गयी है । माँ का मुँह गम्भीर था । माँ पर इस प्रकार अत्याचार होते देख मैं वहाँ से हट आया । मैंने सोचा कि अगर ये महिलाएँ माँ से श्रद्धा करतीं तो उन पर ऐसा अत्याचार नहीं करती ।

कुछ देर बाद मैंने देखा कि माँ उक्त नीलाम्बर साड़ी पहने, नाक में नथ लटकाये, आश्रम की ओर चली आ रही हैं । उन्हें चारों ओर से घेरकर लोग शोरगुल मचाते हुए आ रहे हैं । माँ का चेहरा हँसमुख है, पर वह सहज और सरल नहीं लगा । मुझे बड़ा कष्ट हुआ । जो लोग माँ को इस प्रकार बहुरूपी बनाकर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, उनकी भक्ति या रुचि की प्रशंसा नहीं कर सका । माँ मुझे देखकर मुस्करायीं, पर मेरे मुँह पर विरक्ति की छाप देखकर तुरत दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

आश्रम में प्रवेश करने के साथ ही सभी को अपना विचित्र वेषभूषा दिखाने लगी । मेरी बड़ी लड़की को देखकर माँ ने कहा–"तुम लोग यहाँ क्या देखने आते हो ? साधु कहीं इस तरह की साजसज्जा करते हैं ?"

बाबा भोलानाथ माँ की इस वेशभूषा को देखकर नाराज हो गये । जो लोग माँ को लेकर शोरगुल मचा रहे थे, वे भोलानाथ को नाराज होते देख सन्न रह गये और फिर धीरे–धीरे सब खिसक गये । माँ ने अन्नपूर्णा के मन्दिर में जाकर अपना बहुरूपी साज को खोल दिया और अपनी धोती पहनकर मैदान में टहलने निकल गयीं ।

३० मई, १९३७ ई., रविवार । आज महोत्सव का आखिरी दिन है । इस महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रति वर्ष आश्रम में तीन–चार हजार व्यक्ति आते हैं और सभी प्रसाद ग्रहण करते हैं । कल रात को महिलाओं ने कीर्तन किया था । आज सबेरे माँ लड़के और लड़कियों को लेकर सिद्धेश्वरी रवाना हो गयी । सिद्धेश्वरी के तालाब में महिलाओं को लेकर

पहले माँ ने स्नान किया । हम लोग मन्दिर के पास खड़े रहें । महिलाओं के स्नान करने के बाद हम लोगों ने स्नान किया। सभी आनन्दमग्न थे । माँ को लावा, दही, मीठा आदि से भोग दिया गया । हम लोग प्रसाद ग्रहण करने के बाद ९ बजे घर वापस आ गये ।

दोपहर से मूसलाधार पानी बरसने लगा । महोत्सव में आज अधिक लोग नहीं आ पायेंगे, ऐसा सोचा । बरसात के कारण मैं स्वयं आश्रम नहीं जा सका । शाम होने के कुछ देर पहले आश्रम गया। यहाँ आने पर सुना कि आज तीसरे पहर आश्रम में खूब आनन्द हुआ था । वर्षा के समय आश्रम के आंगन में माँ और बाबा भोलानाथ भक्तों के साथ कीर्तन करते रहे । माँ ने अपने नृत्य से सभी का मन मोह लिया था । इस कीर्तन के कारण अनेक लोगों को भावावेश हुआ था । कीर्तन समाप्त होने पर माँ ने अपने हाथ से सभी को खिचड़ी–प्रसाद वितरण किया था । गरम प्रसाद हाथ पर लेना कठिन था, इसलिए माँ ने सभी को कपड़े में लेकर खाने को कहा । बाद में सभी को लेकर रमना स्थित कालीबाड़ी के तालाब में स्नान करने गयी । पानी–कीचड़ में कीर्तन करने के कारण सभी के कपड़े गन्दे हो गये थे । माँ ने सभी से कहा था कि इन कपड़ों को धोबी के यहाँ न भेजकर स्वयं अपने हाथ से, साबुन लगाकर धोयें ताकि स्मृति चिह्न की रक्षा हो सके ।

उत्सव के अन्त में श्री श्री माँ का ढाका से गमन

३१ मई, १९३७ ई., सोमवार । आज माँ कलकत्ता चली जाएगी । सबेरे सामान्य जलपान करने के बाद आश्रम चला आया । यहाँ आकर सुना कि माँ हम लोगों के घर थोड़ी–थोड़ी देर के लिए गयी थीं और अब विनय बाबू[1] के यहाँ गयी हैं ।

---

१. श्रीयुत् विनयभूषण बंद्योपाध्याय । आप कृषि विभाग में नौकरी करते हैं। श्री श्री माँ के पुराने भक्त हैं ।

बाद में पत्नी की जबानी सुना कि माँ मेरे घर आकर मेरी पत्नी से बोली–

"पिताजी घर में नहीं हैं ? पिताजी तो बाहर ही बाहर रहते हैं । एक आदमी घर पर रहे तो ठीक है । (घर का बगीचा देखकर) कितना सुन्दर बाग है, पर कभी तुम लोगों ने मुझे यह देखने के लिए नहीं कहा ।"

इस प्रकार की और बातें कहने के बाद माँ मोटर पर सवार हो गयी ।

इधर मैं माँ के वापस आने की प्रतीक्षा करता रहा । लगभग आधा घंटा बाद माँ आश्रम में आयी । आश्रम में आते ही माँ अपने कमरे में चली गयीं । सुना की आज भूदेव बाबू सपरिवार बाबा भोलानाथ से दीक्षा लेंगे ।

८–३० बजे तक माँ अपने कमरे में थीं । जब बाहर आयीं तब चारों ओर से स्त्री–पुरुष माँ को प्रणाम करने लगे । भीड़ से बचने के लिए माँ परेश बाबू की मोटर से आश्रम से निकल गयीं और कालीबाड़ी आकर मोटर पर बैठी रह गयीं ।

मैं कुछ देर तक आश्रम में रहने के बाद मैदान में चला आया। दूर से देखा कि माँ की गाड़ी को लोगों ने घेर रखा है । यह दृश्य देखकर मिजाज खराब हो गया । पर उपाय क्या है ?

ठीक उसी समय दीदी माँ ने आकर कहा–माँ का भोजन तैयार है । मैं जाकर माँ को बुला लाऊँ । चूंकि मेरा मिजाज ठीक नहीं था इसलिए यह सन्देशा माणिक नामक एक बालक से कहा ।

माणिक ने उत्तर दिया कि माँ आज आश्रम में प्रवेश नहीं करेंगी। जो कुछ खाना है, वह गाड़ी में बैठकर ही खायेंगी । जब यह समाचार दीदीमां को दिया गया तो दुःख के कारण उनकी आँखें छलछला आयीं। दीदीमाँ का दुःख मुझसे देखा नहीं गया । चूँकि मिजाज पहले से ही गरम था, इसलिए माँ के प्रति अप्रसन्न हो गया ।

ठीक इसी समय देखा कि श्रीयुत् पूर्ण सरकार महाशय और श्रीयुत् योगेश बनर्जी महाशय गुस्से में बाबा भोलानाथ से शिकायत करने गये। सुना कि पूर्ण महाशय जब प्रणाम करने गये तो किसी ने उन्हें धक्का देकर हटा दिया । बूढ़ें आदमी उस धक्कें को सह्य नहीं कर सके और गिर पड़े । यह बात सुनकर मैं क्षिप्त हो उठा और आवश्यकता से अधिक क्रोधित हो उठा ? मैं दौड़कर माँ के पास गया और क्रोधित भाव में माँ को भला–बुरा कहा ।

प्रत्युत्तर में माँ ने क्या कहा, यह सुन नहीं सका । मैंने स्वयं क्या कहा था, वह भी याद नहीं हैं । इतना याद है कि माँ के प्रति बहुत नाराज हो गया था । बहरहाल जबर्दस्ती करके माँ को आश्रम में ले आया । मंदिर के भीतर माँ आहार करने लगीं ।

आहार करते समय माँ ने खुकुनी दीदी से कहा–"अमूल्य पिताजी के साथ कोई बात नहीं हुई, उल्टे उसे दो बार गालियां दीं ।"

दीदी ने जब यह बात कही तो मैंने माँ से कहा–"माँ, तुमने मुझे कब गाली दी ? अभी–अभी तो मैं तुम्हें गाली देकर आया ।"

माँ ने हँसकर कहा – "सच ? मैं सोच रही थी कि मैंने तुम्हें गाली दी ।"

स्नेहमयी माँ का यह रूप कोमल भाव से मेरी कुकीर्तियों को स्मरण दिलाने लगा ।

भोजन के बाद पुनः माँ ने मुझसे कहा–"पिताजी, अब लोगों से मुलाकात करने का प्रबंध करो ।"

हम लोगों ने श्री श्री मां को बरामदे पर खड़ा किया । भक्तों में से एक–एक कर बरामदा के पश्चिम वाली सीढ़ी से आते गये और माँ को प्रणाम करने के बाद पूर्ववाली सीढ़ी से नीचे वापस जाते गये। इस प्रकार की व्यवस्था की गयी ।

लेकिन महिलाएँ माँ को सिन्दूर लगाने में काफी वक्त लेने लगीं। यह देखकर माँ ने मुझसे कहा–"अगर इस तरह चलता रहा तो ३–४ घण्टे लग जायेंगे ।"

मैंने कहा–"तब चलो, तुम्हें मोटर पर बैठा दूँ । वहीं लोग तुम्हें प्रणाम करेंगे ।"

बहरहाल माँ ने इस बार स्वयं ही प्रबन्ध किया । उन्होंने एक व्यक्ति से कहा कि समय होने पर भोलानाथ उन्हें मंदिर में अवश्य ले जांय । मैंने भी समझ लिया कि यही सबसे सुन्दर प्रबंध है ।

महिलाओं के सिन्दूर लगाने का ढंग देखकर माँ ने कहा–"ये लोग सिन्दूर लगाती नहीं, मेरे सिर पर उड़ेल देती हैं ।"

कुछ देर बाद बाबा भोलानाथ आये और माँ को लेकर मोटर पर सवार हुए । हम लोग भी स्टेशन रवाना हुए । नारायणगंज के पास चासरा स्टेशन पर उतरकर माँ भोलानाथ के साथ एक रिश्तेदार के यहां गयी । हम लोग नारायणगंज पहुँचकर माँ का इन्तजार करने लगे ।

स्टीमर छूटने के आधा घण्टा पहले माँ स्टेशन पर आ गई । हम लोग उनके साथ जहाज पर सवार हुए ।

चारुबाबू ने हाथ जोड़ते हुए माँ से कहा–"माँ, कम–से–कम हम लोगों को एक बात कहती जाँय ।"

माँ–कैसी बात ?

चारु बाबू–जो आपकी खुशी हो, वही कहिये ।

माँ–यहाँ कहने को कुछ नहीं है । बहुत बातें हो गयी हैं । तुम लोग अपना नित्य कर्म और बढ़ा दो । दिन गुजरता जा रहा है । जितना हो सके, उतना समय उनके कार्य में लगाओ ।

स्टीमर चल पड़ा और हम सब दुःख भार से लदे ढाका वापस आ गये ।

❒❒❒